पारस परस

वर्ष-9 अंक-2 अप्रैल-जून, 2019, रजि. नं.:यू.पी. एच.आई.एन./2011/39939 पृष्ठ -40 मूल्य- 25

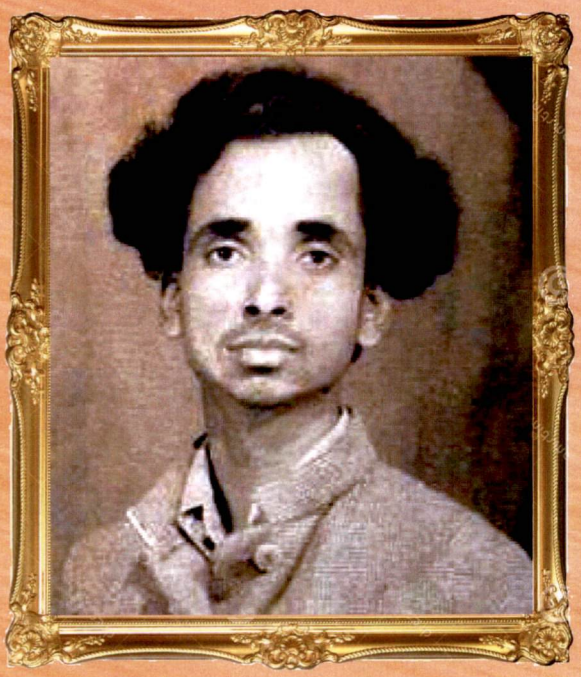

रमेशचन्द्र झा

जन्म- 08 मई 1925 निधन- 07 अप्रैल 1994

जिनगी के एक लहर बीत गइल,
हार गइल घोर अंधकार, किरन जीत गइल।
बदल गइल रंग, आज रंग असमान के,
निखर गइल रूप, रूप साँझ के, बिहान के।
सिहर गइल तार, हर सितार का बितान के,
आग भइल चिनगी से, साध जुगल जिनगी के।
बिखर गइल हर सपना, अधरन से गीत गइल। जिनगी....

बदल गइल परिभाषा आज शूल–फूल के,
रूप आसमान चढ़ल बाग का बबूल के।
परती ना पहिचाने धरती का धूल के,
आर–पार आँगन के, महक उठल चन्दन के।
आपन परतीत गइल, सपना बन मीत गइल। जिनगी....

वर्ष : 9 अंक : 2 अप्रैल-जून, 2019 रजि. नं. : यूपी एचआईएन/2011/39939

पारस परस

हिन्दी काव्य की विविध विधाओं
की त्रैमासिक पत्रिका

संरक्षक
डॉ. एल.पी. पाण्डेय

प्रधान संपादक
प्रो. सूर्यप्रसाद दीक्षित

संपादक
डॉ. अनिल कुमार

कार्यकारी संपादक
सुशील कुमार अवस्थी

संपादकीय कार्यालय
538 क/1324, शिवलोक
त्रिवेणी नगर तृतीय, लखनऊ
मो. 9935930783
Email: paarasparas.lucknow@gmail.com

लेआउट एवं टाइप सेटिंग
मेट्रो प्रिंटर्स
लखनऊ

स्वामी प्रकाशक मुद्रक एवं संपादक डॉ. अनिल कुमार द्वारा प्रकाश पैकेजर्स, 257, गोलागंज, लखनऊ उ.प्र. से मुद्रित तथा ए-1/15 रश्मि, खण्ड, शारदा नगर योजना, लखनऊ उ.प्र. से प्रकाशित।

पारस परस में प्रकाशित रचनाओं में व्यक्त विचार संबंधित रचनाकारों के हैं। संपादक अथवा प्रकाशक का रचनाओं में व्यक्त विचारों से सहमत होना आवश्यक नहीं है। पत्रिका से संबंधित सभी विवाद लखनऊ

अनुक्रमणिका

संपादकीय		2
श्रद्धा सुमन		
आशीष-स्नेह से आँचल मेरा भरा हुआ	डॉ. अनिल कुमार पाठक	4
कालजयी		
स्वप्न का संसार रे यह	पं0 पारस नाथ पाठक 'प्रसून'	5
प्रीत-जहिया सजोर हो जाई	रमेश चन्द्र झा	6
वरदान या अभिशाप	माखन लाल चतुर्वेदी	7
कर्मवीर	अयोध्या सिंह उपाध्याय हरिऔध	8
समय के सारथी		
त्रिभुवन पति अवतार	योगेश प्रवीन	9
दिल की जुबानी	मिर्जा हसन नासिर	10
गांठें	मानिक बच्छावत	11
जीवन	महेन्द्र भटनागर	12
व्यक्तित्व	डा. रमाकान्त श्रीवास्तव	13
अन्तर्दाह	रामेश्वरनाथ मिश्रा	14
जीवन के क्या माने हैं	राजेन्द्र वर्मा	15
विजय-पर्व का फिर मनाना वृथा है	ओम प्रकाश मिश्रा	16
कथा कह पाया नहीं	अशोक कुमार पाण्डेय 'अशोक'	17
उपेक्षा	रवीन्द्र कुमार राजेश	18
क्षितिज के अधर काँपे	कृष्ण मुरारी 'विकल'	19
कलरव		
मन करता है	कमलेश भट्ट 'कमल'	20
फूल हैं हम	यश मालवीय	21
मेरी बात सुनो तो माँ	सुशील सिद्धार्थ	22
टिला-लिली	प्रभाष मिश्र 'प्रियभाष	23
नारी स्वर		
मैं आभारी हूँ	इन्दिरा मोहन	24
मेहमान	डॉ. नलिनी पुरोहित	25
सबै सुधारी	विद्या तिवारी	26
आशीषों का वरद हस्त हो	डॉ. मृदुला शुक्ला 'मृदुल'	27
अंधेरों से निकलना चाहता है	रंजना वर्मा	28
ऐसा क्यों होता है?	उषा सिसोदिया	29
चहक के गाती है	पुष्पा सुमन	30
हर सिंगार	डॉ. शान्ति देवबाला	31
बार-बार मन तोड़-तोड़कर	विद्याविन्दु सिंह	32
नवोदित रचनाकार		
अपना प्यारा गाँव	हरेराम बाजपेयी	33
लाल खपरों पर का चाँद	सतीश चौबे	34
कण्ठ सभी भर्राये	श्याम निर्मम	35
डोकरी फूलो	विजय सिंह	36
वहम	विजय राही	37
मायावी यह संसार	हरे प्रकाश उपाध्याय	38
उनको कहाँ पता था	शैलेन्द्र शान्त	39
धूप	विनोद निगम	40

सकारात्मक दृष्टिकोण ही सर्वोपरि है

इन दिनों एक नया रिवाज़ चल गया है कि कतिपय लोग परोक्ष अथवा अपरोक्ष रूप से ऐसे व्यक्तियों के प्रति अमर्यादित आचरण एवं भाषा का प्रयोग कर रहे हैं, जिन्होंने न केवल देश व राष्ट्र के लिए बल्कि सम्पूर्ण मानव समाज की उन्नति एवं प्रगति के लिए अपना तन–मन–धन अर्थात् सर्वस्व समर्पित कर दिया और बिना किसी भेदभाव के यानि रंग–रूप, जात–पाँत, पंथ–संप्रदाय, मान्यता–विश्वास, क्षेत्र आदि से उठकर मानवता को सर्वोपरि मानते हुए उसकी रक्षा हेतु आजीवन संघर्षरत रहे। वे न तो थके और न ही तत्समय यह सोचा कि उनके ऊपर पूर्णरूप से आश्रित अथवा निर्भर उनके परिवार व सम्बन्धियों के लिये इसका परिणाम कितना प्रतिकूल होगा। कदाचित् उन्होंने उनके भरण–पोषण की भी चिन्ता इसलिए नहीं की होगी क्योंकि उनके सामने केवल परिवार व सम्बन्धियों के सुन्दर भविष्य की चिन्ता नहीं थी बल्कि उनकी चिन्ता सम्पूर्ण मानव जाति को लेकर थी। उनकी आत्मीयता व प्रेम भावना सम्पूर्ण मानवता तक विस्तृत थी। उनकी परिकल्पना ऐसे मानव समाज की थी जहाँ कोई भेदभाव न हो, कोई परतंत्र न हो, किसी को कोई पीड़ा या व्याधि छू न सके –

"सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चित् दुःखभाग् भवेत्।।"

लेकिन आज–कल बहुत से लोग उनके उन बहुमूल्य मानवतावादी योगदानों को विस्मृत कर, उनकी जाति–पाँति, पंथ–सम्प्रदाय, क्षेत्र आदि के आधार पर उनके नाम से संगठन बनाकर उनकी जयंती व पुण्यतिथि मना रहे हैं। हालाँकि ऐसी विभूतियों को याद करना बहुत ही अच्छा है किन्तु जब हम स्वार्थवश उनके व्यक्तित्व के असीमित आयामों को सीमित करते हुए उससे गलत लाभ उठाना चाहते हैं तो यह स्थिति अत्यन्त दुःखद हो जाती है क्योंकि इससे हम उनके व्यक्तित्व तथा उनके संदेशों से वर्तमान तथा भविष्य की पीढ़ी को लाभान्वित होने से वंचित कर देते हैं। इससे भी बड़ी विडम्बना यह है कि इन विभूतियों से किसी भी प्रकार का सम्बन्ध न रखने का ढिंढोरा पीटने के बाद भी कतिपय व्यक्ति एवं संगठन उनकी बुराई कर रहे हैं तथा उन्हें निन्दा एवं आलोचना का विषय बना रहे हैं। ऐसे लोग एक ओर तो इनके योगदान का स्मरण करने से गुरेज रखते हैं दूसरी ओर वे ऐसी बातों के लिए उन्हें उत्तरदायी साबित करने का असफल प्रयास करने लगते हैं जिसके बारे में इन विभूतियों की कोई संलिप्तता नहीं रही।

समग्रतः उपर्युक्त दोनों वर्गों के लोग; एक, जो उन विभूतियों के असीमित व्यक्तित्व को विभिन्न खाँचों में रखकर सीमित करने का प्रयास कर रहे हैं और दूसरे, जो इनके योगदान को किसी भी रूप में स्वीकार नहीं करना चाहते केवल उन्हें भला–बुरा कहते हुए उनकी निन्दा करते रहते हैं; समाज की प्रगति, सौमनस्य एवं सद्भाव के लिये अत्यन्त घातक हैं। निन्दकों के सन्दर्भ में तो विशेषरूप से विभिन्न ग्रन्थों में बड़ी सटीक बातें कही गयी हैं। गरुण पुराण में वर्णित किया गया है :–

"नीचः सर्षपमात्राणि परच्छिद्राणि पश्यति।
आत्मनो बिल्वमात्राणि पश्यन्नपि न पश्यति।।"

गरुणपुराण, अध्याय 113, श्लोक 56

जो नीचबुद्धि के लोग हैं, वे अन्य की सरसों के दाने के बराबर भी त्रुटि देखकर, उसे व्यक्त करने

जो नीचबुद्धि के लोग हैं, वे अन्य की सरसों के दाने के बराबर भी त्रुटि देखकर, उसे व्यक्त करने लगते हैं, किन्तु अपनी बेलफल जैसी त्रुटि रहने पर भी उसकी अनदेखी कर जाते हैं।

इसी प्रकार गोस्वामी तुलसीदास ने भी लिखा है–

बबुर बहेरे को बनाय बाग लाइयत,
रूँधिबे को सोइ सुरतरु काटियत है।
गारी देत नीच हरिचंद हू दधीचिहू को,
आपने चना चबाइ हाथ चाटियत है।
आप महापातकी हँसत हरिहर हू को,
आपु है अभागी, भूरिभागी डाटियतु है।
कलि को कलुष मन मलिन किये महत,
मसक की पाँसुरी पयोधि पाटियत है।।

कवितावली / उत्तरकाण्ड

यानि चना चबाकर हाथ चाटने वाले निकृष्ट लोग भी राजा हरिश्चंद्र (जिन्होंने स्वप्न की घटना मात्र से ही अपना सर्वस्व दान कर दिया) तथा दधीचि (जिन्होंने युद्ध में देवताओं की विजय / वृत्रासुर वध के लिये अपनी अस्थियों से वज्रास्त्र बनाने के लिये सहर्ष अपना प्राण त्याग कर दिया) की आलोचना करते हैं।

इसलिए हमें निन्दा करने की इस प्रवृत्ति से छुटकारा पाना होगा। हम यदि किसी के योगदान की प्रशंसा नहीं कर सकते तो हमें उसकी बुराई करने का भी कोई अधिकार नहीं है। यद्यपि कबीरदास जी ने–

निन्दक नियरे राखिये आँगन कुटी छवाय।
बिन पानी साबुन बिना निर्मल करे सुभाय।।

कहकर निन्दा के सकारात्मक पक्ष को उद्घाटित करने का प्रयास किया था किन्तु निन्दा–रस के प्रभाव में निन्दकों ने अपने अमर्यादित आचरण से उसके अन्तर्निहित शुद्धभाव के साथ जो बलात् आचरण किया, उससे तो उक्त कथन ही सारहीन हो गया। अस्तु, नकारात्मकता से बचते हुए जीवन को सकारात्मक दृष्टिकोण के साथ व्यतीत करना स्वयं और समाज दोनों के लिए श्रेयस्कर है।

यह अंक आप के हाथों में सौंपते हुए अत्यंत प्रसन्नता हो रही है। इस अंक में जिन भी रचनाकारों की रचनाएँ ली गयी हैं उनके तथा उनके परिवार, प्रकाशक आदि के प्रति हृदय से आभार प्रकट करते हैं और आशा करते हैं कि पूर्व की भाँति भविष्य में भी आप सभी का अपार सहयोग मिलता रहेगा।

शुभ कामनाओं के साथ,

डा0 अनिल कुमार

आशीश-स्नेह से आँचल मेरा भरा हुआ

डॉ. अनिल कुमार पाठक

कभी न खोना धैर्य पुत्र! तुम,
मेरे जैसा रखना साहस।
घबराकर बाधाओं से तुम,
मत हो जाना पथ से वापस।
सूक्ष्म रूप में पास सदा मैं खड़ा हुआ,
आशीष–स्नेह से आँचल मेरा भरा हुआ।।

विरथ भले हो जाना चाहे,
कोई कहे तुम्हें पदगामी।
पर बनना आदर्श सभी का,
मुझसा सच्चरित्र, सद्गामी।
राह दिखाऊँगा, साथ में खड़ा हुआ,
आशीष–स्नेह से आँचल मेरा भरा हुआ।।

ज्ञान–ज्योति से तिमिर हटेगा,
ध्वज लहरेगा सच्चाई का,
अहंकार मत करना 'स्व' का।
नश्वर, मिथ्या ऊँचाई का।
जग देखेगा तुम्हें शिखर पर चढ़ा हुआ,
आशीष–स्नेह से आँचल मेरा भरा हुआ।

❖❖❖

स्वप्न का संसार रे यह

पारस नाथ पाठक 'प्रसून'

स्वप्न का संसार रे यह।
भावना को चूर करते,
कल्पना से दूर रहते।
एक जीवन के जलन का,
बन गया आधार रे यह।
स्वप्न का संसार रे, यह।
जलधि से तो ज्वार लेकर,
स्वयं बनकर एक विषधर,
भर–रहा जीवन–कलश में,
विकल हाहाकार रे यह।
स्वप्न का संसार रे यह।
विफल–प्रेमी की कथा है,
या विकल उर की व्यथा है,
अश्रुओं की बाढ़ से रंग,
या करुण इतिहास रे यह।
स्वप्न का संसार रे यह।
पंथ पर काँटे बिछाकर,
चरण में बेड़ी पिन्हाकर,
बन गया है सब तरह से,
आज जीवन भार रे यह।
स्वप्न का संसार रे यह।
भावना साकार होती,
कल्पना जो रंग लाती,
और जीवन की व्यथायें,
एक मधुरिक गीत गाती।
कौन कहता फिर इसी को,
नील सागर ज्वार रे यह।
स्वप्न का संसार रे यह।

❖❖❖

प्रीत जहिया सजोर हो जाई

रमेशचन्द्र झा

प्रीत जहिया सजोर हो जाई,
भाव मन के विभोर हो जाई।

दर्द के बाँसुरी बजाई के,
बोल बहरी कि सोर हो जाई।

हम सँवारब सनेह से सूरत,
रूप सुगनाक ठोर हो जाई।

रात भर नाचि के थकल जिनगी,
जाग जाई त भोर हो जाई।

पाँख आपन पसारि के जईसे
सनचिरैया चकोर हो जाई।

चोट खाई त मोम जइसन मन,
काठ अइसन कठोर हो जाई।

देख के रूप, रूप अनदेखल,
छोट चिनगी धंधोर हो जाई।

रूप का तीर के चुभन कसकी,
दाह दहकी त लोर हो जाई।

के निहोरा करी अन्हरिया के,
आँख झपकी अंजोर हो जाई।

के कहानी सुनी पिरितिया के,
हम सुनाइब त भोर हो जाई।

❖❖❖

वरदान या अभिशाप

माखनलाल चतुर्वेदी

कौन पथ भूले, कि आये।
स्नेह मुझसे दूर रहकर
कौन से वरदान पाये?

यह किरन–बेला मिलन–बेला
बनी अभिशाप होकर,
और जागा जग, सुला
अस्तित्व अपना पाप होकर
छलक ही उट्ठे, विशाल।
न उर–सदन में तुम समाये।

उठ उसाँसों ने, सजन,
अभिमानिनी बन गीत गाये,
फूल कब के सूख बीते,
शूल थे मैंने बिछाये।

शूल के अमरत्व पर
बलि फूल कर मैंने चढ़ाये,
तब न आये थे मनाये–
कौन पथ भूले, कि आये?

❖❖❖

कर्मवीर

अयोध्या सिंह उपाध्याय हरिऔध

देख कर बाधा विविध, बहु विघ्न घबराते नहीं,
रह भरोसे भाग के दुख भोग पछताते नहीं।
काम कितना ही कठिन हो किन्तु उबताते नहीं,
भीड़ में चंचल बने जो वीर दिखलाते नहीं।
हो गये एक आन में उनके बुरे दिन भी भले,
सब जगह सब काल में वे ही मिले फूले–फले ।

आज करना है जिसे करते उसे हैं आज ही,
सोचते कहते हैं जो कुछ कर दिखाते हैं वही।
मानते जो भी हैं सुनते हैं सदा सबकी कही,
जो मदद करते हैं अपनी इस जगत में आप ही।
भूल कर वे दूसरों का मुँह कभी तकते नहीं,
कौन ऐसा काम है वे कर जिसे सकते नहीं ।

जो कभी अपने समय को यों बिताते हैं, नहीं,
काम करने की जगह बातें बनाते हैं, नहीं।
आज कल करते हुये जो दिन गँवाते हैं, नहीं,
यत्न करने से कभी जो जी चुराते हैं, नहीं।
बात है वह कौन जो होती नहीं उनके लिए,
वे नमूना आप बन जाते हैं औरों के लिए ।

व्योम को छूते हुये दुर्गम पहाड़ों के शिखर,
वे घने जंगल जहाँ रहता है तम आठों पहर।
गर्जते जल–राशि की उठती हुयी ऊँची लहर,
आग की भयदायिनी फैली दिशाओं में लपट।
ये कंपा सकती कभी जिसके कलेजे को नहीं,
भूलकर भी वह नहीं नाकाम रहता है, कहीं।

❖❖❖

त्रिभुवन पति अवतार

योगेश प्रवीन

अवध पुरी के राजभवन में,
कौसल्या के स्वर्ण सदन में,
राजा दशरथ के आँगन में,
प्रगटे हैं, करतार,
हुआ त्रिभुवन पति का अवतार।

रितु वसन्त ने ली अँगड़ाई,
कौसल्या की गोद सजाई।
निराकार ने जगहित कारन
रूप धरा साकार।
हुआ त्रिभुवन पति का अवतार।

झूम उठे सरयू के किनारे,
धूम मची है द्वारे–द्वारे।
मंगल घट छलके घर–घर में,
सज गये बन्दनवार।
हुआ त्रिभुवन पति का अवतार।

जग में निर्मल ज्योति जगाने,
मानवता को राह दिखाने।
प्रभु आये धरती पर हरने,
इस धरती का भार।
हुआ त्रिभुवन पति का अवतार।।

❖❖❖

दिल की जुबानी

मिर्जा हसन नासिर

यह गीत मेरी उलझी उल्फ़त की कहानी है,
जो तोड़ दिया तुमने उस दिल की जुबानी है।

जो भूल गये हमको, क्यों याद वो आते हैं,
घुट–घुट के गुजरने की इस दिल ने क्यों ठानी है।

ऐ काली घटा तू ही आ पूछ के गोरी से,
क्या मेरी खता है जो रूठी हुई रानी है।

एक भूल जवानी में हो जाती है अक्सर ही,
कहते हैं जवानी तो होती ही दिवानी है।

हर चीज गवाँ दी है हमने तो मुहब्बत में,
बस तुम से मिली बाक़ी यादों की निशानी है।

इक उम्र है गुज़री यूँ रोते हुए यादों में,
आँखे हैं थमी जाती बाक़ी नहीं पानी है।

यादों ने घुला डाला, आहों ने जला डाला,
लो! ख़त्म यहाँ 'नासिर' की प्रेम–कहानी है।

❖❖❖

गाँठें

मानिक बच्छावत

वह रस्सी
बहुत सीधी थी
लोगों ने गाँठें
डालनी शुरू कीं

इतनी गाँठें डालीं
डालते ही गए
वह सीधी न रह सकी
उसकी सतह बेतरह
खुरदरी हो गई।

वह अब कुंडली मारे
साँप की तरह
दिखने लगी,
साँप और रस्सी का
अन्तर मिट गया।

गाँठें
जो लोगों ने डालीं
रस्सी के बजाय
मन में उतर गईं
उनका खुलना मुश्किल हो गया।

❖❖❖

जीवन

महेन्द्र भटनागर

हर आगत पल का
स्वागत है ।
मेरे हाथ पकड़
उठता है दिन,
मेरे कंधों पर चढ़
बढ़ता है दिन ।
मेरे मन से
अभिनव रचना
करता है दिन,
मेरे तन से
सृष्टि नयी
गढ़ता है दिन।
लड़ मेरे बल पर
जीता है दिन,
क्षण–क्षण मेरे जीने पर
जीता है दिन।
मेरी गति से
सार्थक होता काल अमर,
मैं ही हूँ
अविजित अविराम समर,
मेरे सम्मुख हर
पर्वत–बाधा नत है,
हर आगामी कल का
स्वागत है।

❖❖❖

व्यक्तित्व

डॉ. रमाकान्त श्रीवास्तव

गाँव से दूर महानगर
भीड़–भाड़, आपा–धापी, शोरगुल
आदमियों के महासागर में
डूबा मेरा व्यक्तित्व
अनजाना, अपरिचित, अदृश्य।
अपने व्यक्तित्व की तलाश में छटपटाता मैं
आ गया हूँ वहाँ
जहाँ वनान्त के एकान्त में
फैली है छतनार बरगद की छाँव,
उन्मुक्त गगनचारी पंछियों का
स्वातंत्र्य गान
मेरे कानों में मिश्री घोलता जा रहा है।
मेरी अन्तश्चेतना का दुकूल
डोलता जा रहा है।
मेरा रोम–रोम अब नहीं है आलोड़ित, आन्दोलित।
संकल्पित है
मनोनुकूलन जीवन जीने को,
अपनी राह अपने आप बनाने को।
मेरे हाथ और पाँव
हल्के होते जा रहे हैं।
(बेड़ियाँ हैं,न हथकड़ियाँ)
मैं विराट् से विराट्तर होता जा रहा हूँ–
पंछियों से अधिक उन्मुक्त
बरगद से भी अधिक सुविस्तृत
असीम, अनन्त, अपराजेय।

❖❖❖

अन्तर्दाह

रामेश्वर नाथ मिश्र

क्यों आज विकल मन मेरा?
क्यों हृदय भरा लगता है ?
क्यों जन्म – जन्म का सोया
संचित वियोग जगता है ? ।

क्यों प्रकृति मूक बन बैठी?
क्यों पवन नहीं चलता है ?
क्यों मेरे भोले मन में
पावक – प्रदाह पलता है?

कोमल कठोर करुणा की
कारा में क्यों मन मेरा ?
बालक – सा सिसक रहा है
है चारों ओर अँधेरा?

क्यों आज मेरी आँखों में
अविरल आँसू धारा है?
क्या नहीं मिलेगा फिर वह
जो आँखों का तारा है?

जिस प्रतिमा के ऊपर मैं
यह जीवन – पुष्प चढ़ाता,
जिसके कोमल चरणों पर
कविता का फल धर जाताय।

❖❖❖

जीवन के क्या माने हैं

राजेन्द्र वर्मा

यद्यपि सम्बन्ध पुराने हैं,
फिर भी हम ज्यों अनजाने हैं।

रिश्तों के धागे मत उलझा,
तुझको ही फिर सुलझाने हैं।

मरने का एक सबब होगा,
जीने के लाख बहाने हैं।

हैं जन्म–मृत्यु ऐसे पड़ाव,
जीवन के पथ में आने हैं।

औरों के काम नहीं आये,
फिर जीवन के क्या माने हैं?

मुझे मंजूरी है

जब तक हृदयों में दूरी है,
मेरी हर गजल अधूरी है।

कोमल कल्पना न मर जाये,
सपने देखना जरूरी है।

शायद कोई रस्ता निकले,
चुप्पी टूटनी जरूरी है।

वाणी का कोई काम नहीं,
जब बात मौन में पूरी है।

अपनी शर्तों पर जीने की,
मिल गयी मुझे मंजूरी है।

❖❖❖

विजय-पर्व का फिर मनाना वृथा है

ओम प्रकाश मिश्र

बनाना वृथा बाँस की ठठरियों का,
जलाना वृथा बाँस की ठठरियों का।
धरा पर विषमता अगर प्राण पाये,
विजय–पर्व का फिर मनाना वृथा है।

हरी जा रही है दुखी–लाज सीता,
हरी जा रही लक्ष्मी भी पुनीता।
न जन की बचा लाज लक्ष्मी सके तो,
कृत्रिम सीय का फिर छुड़ाना वृथा है।

न भय–भूत भागा विवशता न सोई,
मनुज भी सुखी हों विहँसता न कोई।
धरा पर जो पुरुषार्थ साहस न जागा,
लषण का समर सर चलाना वृथा है।

कलह क्रोध के रूप जग से न भागे,
मनुज ने अभी स्वार्थ–साधन न त्यागे।
अगर त्याग संयम न स्नेह जागा,
भरत राम का उर लगाना वृथा है।

अगर भुखमरी का रहा जोर जारी,
घरों में रही कुलवधू भी उघारी।
सिसकती धरा के न दुख–दैन्य भागे,
तो फिर राम का राज्य लाना वृथा है।

विषमता, विवशता हृदय की जलाओ,
सभी स्वार्थ–साधन हृदय से छुड़ाओ।
मनुज एकता, स्नेह, सौरभ बिखेरे,
नहीं तो विजय गीत गाना वृथा है।

विजय पर्व का फिर मनाना वृथा है।

❖❖❖

कथा कह पाया नहीं

अशोक कुमार पाण्डेय 'अशोक'

उड़ती रही धूल धरातल से,
फिर भी हर ओर है जाना पड़ा।
दिन–रैन न चैन रही अति शुष्क
समीर की मार को खाना पड़ा।
कितनी मिली पीर न पूछो सखे,
नित शूलों से साज सजाना पड़ा।
ऋतुराज के लालच में हमको,
पतझार का भार उठाना पड़ा।

भरमार अपार है कंटकों की,
रस रंग का शुष्क ठिकाना हुआ।
इसी जीवन–वाटिका का कभी, जीवन–
में न मनोहर बाना हुआ।
कलियों को न रंच भी आयी हँसी,
न कभी अलि–वृन्द का गाना हुआ।
पतझार का जाना हुआ न कभी,
न वसन्त–बहार का आना हुआ।

❖❖❖

उपेक्षा

रवीन्द्र कुमार राजेश

चोट हथौड़े की भी जिसको तोड़ नहीं पायी,
किन्तु उपेक्षा ने अपनों की उसको तोड़ दिया।
सुखद क्षणों में रहे साथ, जो–
कुछ चाहा पाया।
दुर्दिन में उनमें से कोई–
`काम नहीं आया।।
कल तक बने रहे जो अपने कैसे बदल गये,
संकट की घड़ियों में सबने उसको छोड़ दिया।
जिनको अपना समझ सहारा,
माना जीवन का।
सब कुछ किया समर्पित उनको,
मीत बनें मन का।।
बदले हुए समीकरणों में सब कुछ बदल गया,
निहित स्वार्थों की धारा ने कैसा मोड़ लिया।
अपनों में रहने के सारे,
टूट गये सपने।
जिनसे कुछ संबन्ध नहीं था,
बने आज अपने।
अपने और पराये की परिभाषा बदल गयी,
अनजानों से उसे नियति ने कैसा जोड़ दिया।

❖❖❖

क्षितिज के अधर काँपे

कृष्ण मुरारी 'विकल'

युग की रुचि को भाँपे, क्षितिज के अधर काँपे,
वातायन खोल गये, बिन बरसे डोल गये।

साँसों की सावित्री,
जपती है गायत्री।
देख तपे तापस की,
दग्ध भावना मसकी।

मानसून के द्वारे, नीरद हारे, हारे,
अपना तप तोल गये, कलई खुद खोल गये।

पुरवा की साँसों में,
संकल्पित न्यासों में।
घन–गर्जन की श्रद्धा,
है द्वय कर–आबद्धा।

मन–चंचल चपला के, बने स्वप्न अबला के,
कितना विष घोल गये, यह क्षण अनमोल गये।

मन के मैदानों में,
अनुगुंजित गानों में।
साजिन्दों से चमके,
इन्द्रधनुष से चमके।

उलटी मति पवन चले, बदली को लगा गले,
बादल–दल लोल गये, खोल स्वयं पोल गये।

❖❖❖

मन करता है

कमलेश भट्ट 'कमल'

मन करता है, किसी रात में
चुपके से उड़ जाऊँ,
आसमान की सैर करूँ फिर
तारों के घर जाऊँ।

देखूँ कितना बड़ा गाँव है
कितनी खेती–बारी,
माटी–धूल वहाँ भी है कुछ
या केवल चिनगारी।

चंदा के संग क्या रिश्ता है
सूरज से क्या नाता,
भूले–भटके भी कोई क्यों
नहीं धरा पर आता।

चाँदी जैसी चमक दमक, फिर
क्यों इतना शरमाते,
रात–रात भर जागा करते
सुबह कहाँ सो जाते?

❖❖❖

फूल हैं, हम

यश मालवीय

गीत–नाटक–चित्रकारी,
कार्यशाला है, हमारी।
नये स्वर से सज रहे हैं,
तालियों से बज रहे हैं।
जिन्दगी के रंग हैं, हम,
मुश्किलें सब तज रहे हैं।
ऊँट के चरचे कहीं हैं,
कहीं घोड़े की सवारी।
हँसी, कविता, कहकहे हैं,
हम कि झरनों से बहे हैं।
ध्यान से सुनिए कि हमने,
बहुत–से किस्से कहे हैं।
फूल हैं हम, खोलते हैं,
रोज खुशबू की पिटारी।
हम किताबें पढ़ रहे हैं,
और खुद को गढ़ रहे हैं।
भोर के सूरज सरीखे,
आसमां पर चढ़ रहे हैं।
आँख में सपने, खिलौनों,
से भरी है, आलमारी।
कार्टूनों से किलकते
रोज ही कुछ नया लिखते,
देह पर खिलता पसीना
हम कभी भी नहीं थकते।
लोरियों से गूँजते हैं,
नींद में भरते हुंकारी।

❖❖❖

मेरी बात सुनो तो माँ

सुशील सिद्धार्थ

सबके कहने पर मत जाओ,
मेरी बात सुनो तो माँ।

इतना होमवर्क होगा तो,
सब कैसे कर पाऊँगी।
मैडम इतना डाँटेंगी तो,
सचमुच मैं डर जाऊँगी।

पढ़ने से जी नहीं चुराती,
लेकिन ये समझो तो माँ।

फूल तोड़ते हैं जब सारे,
गुस्सा मुझको आता है।
कभी टोंक देती हूँ तो,
फौरन झगड़ा हो जाता है।

तनिक पार्क का हाल देखने,
मेरे साथ चलों तो माँ।

झूठ–मूठ सब जड़ देते हैं,
तुम यकीन कर लेती हो?
अपने मन में इत्ता सारा,
गुस्सा क्यों भर लेती हो?

मुझको रोना आ जायेगा,
अब थोड़ा हँस दो तो माँ।

❖❖❖

टिला-लिली

प्रभाष मिश्र 'प्रियभाष'

चूहेराम उड़ाते खिल्ली,
टिली, लि–ली,
पकड़ न पाई मोटी बिल्ली
टिली, लि–ली।

नाली में मुँह धो आओगी,
फिर भी मुझे न छू पाओगी,
मौसी बहुत दूर है दिल्ली।
टिली, लि–ली।

मुझसे रहती हो खिसयानी,
लेकिन क्यों मर जाती नानी,
अगर भौंक दे पिल्ला–पिल्ली।
टिल, लि–ली।

झबरू जी रस घोला था,
मुझको पहलवान बोला था,
तुझको बता गए मरगिल्ली।
टिली, लि–ली।

कमजोरों को जो न सताते,
वही बहादुर हैं कहलाते,
क्या समझीं मैडम सिलबिल्ली।
टिली, लि–ली।

❖❖❖

मैं आभारी हूँ

इन्दिरा मोहन

अपने बूते जो मैं चलती,
बैठी होती
वृक्ष किनारे,
तुमने दे विश्वास,
कोर काजल से भर दी।

दीन हीन सी, थकी–थकी सी,
भरी धूप में खड़ी अकेली,
हैं सारे यात्री अनचीन्हें,
किसको कहती सखी सहेली।

तुमने अपना हाथ बढ़ाकर,
अभय–दान
मुझको दे डाला,
दिशा–बोध–उल्लास,
हँसी आँचल में भर दी।

धूल झाड़ दी मेरे तन की,
मन में मंगल–शंख बजाया।
अपने को पहचान सकी हूँ,
मेरा उजड़ा नीड़ बसाया।

उत्सव की शोभा मुखड़े पर,
पूरनमासी
कांति निराली,
आँगन भोर उजास,
अटारी निर्मल कर दी।
मैं आभारी हूँ।

❖❖❖

मेहमान

डॉ0 नलिनी पुरोहित

मुझे सुख की चिन्ता नहीं,
जो आए बैठे ही नहीं,
उसकी क्या चिन्ता करना
मैं उसे बहुत जानती भी नहीं ।
कैजुअल मीटिंग हो जाती है।

दुःख तो हमेशा ही है साथ मेरे।
यहाँ–वहाँ।
इस कमरे से उसे कमरे तक,
कभी–कभी रात की बाहों का
लेता घेर।
मेरी चिन्ता उसे हमेशा रहती
शायद इसलिए
मैं उसे अपना समझती।

कभी–कभी अनायास ही
जो हो जाता मुझसे दूर,
मैं खुद से पूछती
कहीं यह तो नहीं है सुख।
भले मेहमान ही सही
एक आत्मविश्वास सा
आ जाता है
जानकर
शायद
उसे भी मेरा घर भाता है।

फिर तुरन्त ही सँभल जाती हूँ।
जो अपने हैं
वे ही तो अपना बने रहेंगे।
कहीं आज इसमें डूब गयी,
दुःख को थोड़ा भी भूल गयी।
दुःख और भी सँभल जाएगा,
जो कभी–कभी जाता है,
हमेशा के लिए रह जाएगा।

और मैं शायद
मेहमान की सेवा से
वंचित ही रह जाऊँगी।

❖❖❖

सबै सुधारी

विद्या तिवारी

मुद मोदक है हरि भक्तन के,
रक्षक हैं हरि संतन के।

देखि, देखि मन अति अनुरागत,
युगल चरण मन मोहन के।

नाम रूप दोऊ अति अनुरागत,
चित्त हरत हरि निज जन के।

बाँह पकरि भव भार उतारति,
दुःख हरत हरि जीवन के।

कृष्ण–कृष्ण लै नाम बुलावे,
आय बसत हिय सन्तन के।

पावन करत चित्त की चादर,
भार उठावत भक्तन के।

भक्ति मुक्ति दोऊ निधि बाँटे,
बन्धन छोरत कर्मन के।

लेत उठाय लगाय हिये में ,
मातु पिता प्रिय दीनन के।

विद्या की हरि सबै सुधारी,
चरण शरण असुरारी के।

❖❖❖

आशीषों का वरद हस्त हो

डॉ0 मृदुला शुक्ला 'मृदुल'

शीतल–मन्द–सुगन्ध पवन में,
मंजुल दिव्याकर्षण हो।
मृदुमय ज्योतिर्मय हो जीवन,
नवल वर्ष नित मंगलमय हो।

नई उमंग तरंगित जीवन,
मन में हो उत्पन्न सदा।
नवल वर्ष की रंगभूमि में,
कर्म करें नित नया–नया।

ज्योतिर्मय हो सुपथ सभी का,
खुशियों का नव वैभव हो।
नवल वर्ष में जीवन की,
विकसित 'मृदु' डाली–डाली हो।

सुख–वैभव के छत्र तले नव,
आह्लादक 'मृदु' मैत्री हो।
विघ्न न कोई हो राहों में,
सभी ओर नव मंगल हो।

स्वर्णमयी यह जीवन के पथ पर,
निष्कण्टक 'मृदु' पुष्पित हो।
नवल वर्ष में तन–मन उज्ज्वल,
गंगा–सी नव पावनता हो।

तन–मन पुलकित आह्लादित हो,
शत–शत खुशियों का आगम हो।
जीवन का मधुबन सुरक्षित हो,
आशीषों का संगम हो।

❖❖❖

अँधेरों से निकलना चाहते हैं

रंजना वर्मा

अँधेरों से निकलना चाहते हैं,
सदा बन दीप जलना चाहते हैं।

रपट जाते कदम हैं रास्ते पर,
फिसल कर फिर सँभलना चाहते हैं।

निगाहों ने तुम्हें ले कर जो देखे,
इन्हीं ख्वाबों में ढलना चाहते हैं।

अंधेरे जब घिरे हर ओर हों तब,
शमा बन कर पिघलना चाहते हैं।

हवा देने लगी हैं थपकियाँ अब,
कली से फूल बनना चाहते हैं।

हमें समझो न तुम अपना भले ही,
तुम्हारे साथ रहना चाहते हैं।

मुसीबत तो कभी भी घेर लेती,
समय के साथ चलना चाहते हैं।

❖❖❖

ऐसा क्यों होता है?

उषा सिसोदिया

धीर गम्भीर सागर–अनंत गहराई इसकी, हृदय अति विशाल।
अंतर में समोये कितनी अनुपम निधियाँ
अमिय और हलाहल भी
सागर मंथन में सब दे डाला इसने।

देवों को और साथ में असुरों को भी।
इतने विशाल हृदय वाला ऐसा दानी दाता
क्यों रखता है अपने अंदर बसे छोटे से एक सीप को
यूँ तृषित ऐसे प्यासा?

प्रातः की सुहावनी बेला संध्या की शीतल छाया,
इस सुखद समय में परछाईं साथ–साथ चलती है।
चढ़ती दोपहर की सीधी धूप में
कठिन समय देख वही परछाईं कहीं दूर छिपी होती हैं।

❖❖❖

चहक के गाती है

पुष्पा सुमन

प्यार की कोई कोयल जब चहक के गाती है,
आसमां से आलों के तब ईनाम पाती है।

तोड़ता है सुख माली यह अजब तमाशा है,
जब चमन में कोई कली, ज्यादा खिलखिलाती है।

देवता है या दानव इसको क्या ख़बर होगी,
प्यार की नदी सी दुल्हन, घर पिया के जाती है।

और से शिकायत क्या जबकि एक औरत ही,
बेरहम हो औरत की अर्थियाँ सजाती है।

आँधियों से क्या लड़ना क्या गिला अँधेरा से,
प्रीति का दिया ऐसा तेल है न बाती है।

कुछ वफा के वादे हैं, कुछ सफर की कसमें हैं,
यूँ नहीं कोई सरिता, सिन्धु में समाती है।

शब्द–शब्द में तुझको मैंने बाँध रक्खा है,
मेरी हर गजल 'पुष्पा' तुझको गुनगुनाती है।

❖❖❖

इंतजार

डॉ. शान्ति देवबाला

झड़ रहे हरसिंगार के फूल,
चुपचाप धरा के तल पर नीरव।
झड़ रही शेफाली मृदुल मधुर,
गूँज रहा पाखी का कलरव।

कलियाँ सोती रहीं रात भर,
डाल निशा का श्यामल आँचल।
आतुर खिलता रहा रात भर,
सिंदूरी सपनों का गुप चुप उन्मीलन।

हर सिंगार की नन्हीं उजली सिंदूरी कलियाँ,
अवनि जागी, जागा अम्बर।
जाग उठे चेतन जड़ नश्वर,
केतु लिये, जागृति का पूरब।

उभरा सूरज अपनी आभा लेकर,
सात अश्वों के रथ पर चढ़कर।
कूजे कलरव, पंख पाखी हुए मुखर,
उभरे पूजा अर्चन के मंद मधुर।

अर्घ्य देता पारिजात अंजुरि भर, भर।
हरसिंगार पुलक झड़ता है झर, झर।
जागरण के इस मोड़ पर्व पर।
पारिजात ने कर दिया नमन,
धरा पर सिंदूरी अर्घ्य चढ़ाकर।

❖❖❖

बार-बार मन तोड़, तोड़कर

विद्याविन्दु सिंह

बार–बार मन तोड़, तोड़कर,
बार–बार फिर मन हरते हो।
बार–बार जब सपने टूटें,
बार–बार फिर क्यों रचते हो।

टूटे पंख नहीं उड़ पाऊँ,
बोलो तुम तक कैसे आऊँ?
तोड़, तोड़कर जग के बन्धन,
शरणागत कैसे हो जाऊँ?

तड़प रहा मन प्राण यहाँ पर,
फिर तुम चुप–चुप क्यों लखते हो?
बार–बार मन तोड़–तोड़कर....।

कल को, किसने देखा–जाना,
आज नहीं लगता पहचाना।
बीत गया जो हुआ पराया,
हर क्षण है लगता अनजाना।
कैसे समझूँ किस पल आकर,
कैसे–कैसे तुम छलते हो?
बार–बार मन तोड़–तोड़कर.....।

निपट निराश क्षणों में भी तो,
ज्योति पुंज बनकर आते हो।
फिर जब पथ उजला हो जाता,
विद्युत से तुम छिप जाते हो।
आँख मिचौली के अँधियारे,
फिर–फिर तुम पथ में भरते हो।
बार–बार मन तोड़, तोड़कर,
बार–बार फिर मन हरते हो।

❖❖❖

अपना प्यारा गाँव

हरेराम बाजपेयी

बहुत याद आता है मुझको, अपना प्यारा गाँव,
कैसे भूलूँ, भूल न पाऊँ अपना प्यारा गाँव।

नहर किनारे आम बगीचा,
हरी घास का बिछा गलीचा,
याद आ रहा अब भी मुझको,
वह प्यारा–सा गाँव।
जहाँ बैठ कर हम थे बहाते,
पत्ते–कागज की नाव। बहुत याद।

बरगद छैया, खेल खिलैया,
छुपा–छुपाई और गल बहियाँ।
खलिहानों में खेल कबड्डी,
मैं हूँ अव्वल, तू है फिसड्डी।
जो होता था सबसे छोटा,
उससे लेते दाँव। कैसे भूलूँ

देख के पीली–पीली सरसों,
मन हर्षित रहता था बरसों।
श्यामा, कजरी, भूरी गायें,
नाम पुकारत हुंकरत आयें,
श्याम सलोनी संध्या आती,
पहन के पायल पाँव। कैसे भूलूँ...

यहाँ न उगता सूरज दिखता,
और न दिखती संध्या लाली।
ऊँचे–ऊँचे भवन शहर के,
लम्बी लम्बी सड़कें काली।
सिर्फ शोर है और शोर है,
चका चौंध की काली छाँव। कैसे भूलूँ...

❖❖❖

लाल खपरों पर का चाँद

सतीश चौबे

वहाँ लाल खपरों के ऊपर
चंदा चढ़ आया रे ।

आज टेकड़ी के सीने पर दूध बिखर जायेगा,
आज बड़ी बेडौल सड़क पर रूप निखर आयेगा।
आज बहुत खामोश रात में अल्हड़ता सूझेगी,
आज पहर की निर्जनता में मादकता बूझेगी।
वहाँ किसी के आँचल पर मोती जड़ आया रे।

वहाँ लाल खपरों के ऊपर
चंदा चढ़ आया रे।

आज वहाँ नदिया के जल में चाँद छन चुका होगा,
नदियों पर बहते दियों का रूप मर चुका होगा।
आज घाट पर बेड़ों का जमघट भी लहरायेगा,
आज सैर के दीवानों पर नशा रंग लायेगा।
नदिया के रेशों पर जैसे रेशम कढ़ आया रे।

वहाँ लाल खपरों के ऊपर
चंदा चढ़ आया रे।

आज दूर तक फैले खेतों पर चाँदी उग आई,
आज गाँव की टीलों तक जैसे एक डोर खिंच आई।
आकाश पर आज बुन गया एक दूधिया जाला,
मिट्टी पर ज्यों लुढ़क गया हो भरे दूध का प्याला।
धरती के चेहरे पर जैसे शीशा मढ़ आया रे।

वहाँ लाल खपरों के ऊपर
चंदा चढ़ आया रे।

❖❖❖

कण्ठ सभी भर्राए

श्याम निर्मम

आँखों में सपनों की भरी नदी सूख गई,
और हमें मरुथल के संग–संग बहना है।

गढ़ते वक्तव्य रहे
बस्ती के सीने पर,
खिसकाकर सीढ़ियाँ
चढ़ते ख़ुद जीने पर।

पान कर हलाहल का कण्ठ सभी भर्राए,
और हमें पीड़ा को गा–गाकर कहना है।

पर्वत–सा दर्द भले
सुना रही बाँसुरी,
रोम–रोम आग हुई
प्राणों की माधुरी।

जीवन का फलसफा समझा नहीं पाये हैं,
और हमें दुःख–सुख को साथ–साथ सहना है।

इस जलते अम्बर से
टूटेंगी बिजलियाँ,
प्यास को बुझाने में
तड़पेंगी मछलियाँ ।

समय की तरंगों से बर्फ नहीं हो पाये,
और हमें अग्नि के मुहानों में दहना है ।

❖❖❖

डोकरी फूलो

विजय सिंह

धूप हो या बरसात
ठण्ड हो या लू।
मूड़ में टुकनी उठाये
नंगे पाँव आती है।
दूर गाँव से शहर
दोना–पत्तल बेचने वाली।

डोकरी फूलो को
जब भी देखता हूँ
देखता हूँ उसके चेहरे में
खिलता है जंगल

डोकरी फूलों
बोलती है,
बोलता है जंगल।

डोकरी फूलों
हँसती है,
हँसता है जंगल।

क्या आपकी तरफ
ऐसी डोकरी फूलो है।
जिसके नंगे पाँव को छूकर, जंगल
आपकी देहरी को
हरा–भरा कर देता है?

हमारे यहाँ
एक नहीं
अनेक ऐसी डोकरी फूलो हैं,
जिनकी मेहनत से
हमारा जीवन
हरा–भरा रहता है।

❖❖❖

वहम

विजय राही

मैंने जब–जब मृत्यु के बारे में सोचा
कुछ चेहरे मेरे सामने आ गये
जिन्हें मुझसे बेहद मुहब्बत है।
हाँलाकि ये मेरा एक ख़ूबसूरत वहम भी हो सकता है
पर ये वहम मेरे लिए बहुत जरूरी है।
मैं तो ये भी चाहता हूँ–
इसी तरह के बहुत सारे वहम
हर आदमी अपने मन में पाले रहे।
गर कोई एक वहम टूट भी जाये
तो आदमी दूसरे के साथ जिंदा रह सके।
बच्चों को वहम रहे कि–
इसी दुनिया में है कहीं एक बहुत बड़ी खिलौनों की दुनिया,
वो कभी वहाँ जायेंगे और सारे खिलौने बटोर लायेंगे।
बूढ़ों को वहम रहे कि
बेटे उनकी इज्जत नही करते
पर पोते जरूर उनकी इज्जत करेंगे।
औरतों को वहम रहे कि
जल्द ही सारा अन्याय ख़त्म हो जायेगा।
किसानों को वहम रहे कि
आनेवाली सरकार उनको फसल का मनमाफिक मूल्य देगी।
मजदूरों को वहम रहे कि
कभी उनको उचित मजदूरी मिलेगी।
सैनिकों को वहम रहे कि
जल्द ही जंग ख़त्म होगी।
और वो अपने गाँव जाकर काम में पिता का हाथ बँटायेंगे।
बेरोजगारों को वहम रहे कि
कभी उनकी भी नौकरी होगी।
जिससे वो दे सकेंगे अपने परिवार को दुनियाभर की ख़ुशियाँ।
आशिकों को वहम रहे कि
कभी उनकी प्रेमिका उनको आकर चूमेगी और कहेगी
"मैं आपके बिना जिंदा नही रह सकती।

❖❖❖

मायावी यह संसार

हरे प्रकाश उपाध्याय

अधिकांश चीजें मायावी हैं।
तमाम संकटों के बीच ही
हँसी की बारिश
गुर्राहटों के बीच
कोयल की विह्वल पुकार।
ऐ! कोयल ! तुम पागल हो और
एक दिन तुम पागल बना दोगी समूची दुनिया को।
ऐ नदी ! तुम जरा इधर नहीं आ सकती शहर में।
ऐ हवा, तुम अपना मोबाइल नं० दोगी मुझे,
सुनो, सुनो, सुनो....

अधिकांश चीजें मायावी हैं...
जिनकी आवाजों के शोर के बजे नगाड़े
उनसे भागे जिया
जिनकी आवाज न आये
उसी आवाज पर पागल पिया..
जहाँ रहने का ठौर, मन वहाँ न लागे मितवा।
चल, यहाँ नहीं, यहाँ नहीं, यहाँ नहीं...
पता नहीं कहाँ
चल कहीं चल मितवा।
अधिकांश चीजें मायावी हैं।

जिन चीजों से प्रेम वे अत्यन्त अधूरी,
इन अधूरी चीजों की भी महिमा गजब।

यह जीवन सुखी–दुःखी एक पहेली।

जी नहीं रहे हम
बस अपनी उम्र के घण्टे–पल–छिन गिन रहे बस,
और इसी गुणा–भाग में एक लम्बी उम्र गुजार कर
जो गये
उनके लिए मर्सिया पढ़ रहे हैं, हम...।

❖❖❖

उनको कहाँ पता था

शैलेन्द्र शान्त

गर्वित थे
सीख कर हुनर,
डूब–डूब कर
ख़ूब–ख़ूब
करते हुए भरोसा।

हाथों के हुनर से
नहीं बढ़ता है देश आगे,
पीछे छूट जाता है
उनको कहाँ पता था।

कि जब आता है, विकास
तो बदल जाता है, मतलब,
हास–परिहास का
उनको कहाँ पता था।

हास को हंस के पंख लग जाते हैं

हाथ पर धरे हाथ
बैठे तकते हैं,
सूनी आँखों से आकाश
हुनरमन्द हाथ।

और उनकी तरफ
ईश्वर भी नहीं देखता
पलट कर
उनको कहाँ पता था।

❖❖❖

धूप

विनोद निगम

घाटियों में रितु सुखाने लगी है।
मेघ धोये वस्त्र अनगिन रंग के,
आ गये दिन, धूप के सत्संग के।

पर्वतों पर छन्द फिर बिखरा दिये हैं,
लौटकर जाती घटाओं ने।
पेड़, फिर पढ़ने लगे हैं, धूप के अख़बार,
फुरसत से दिशाओं में।
निकल फूलों के नशीले बार से
लड़खड़ाती है हवा,
पाँव तो पड़ते नहीं हैं ढंग से।
आ गये दिन, धूप के सत्संग के।

बँध न पाई निर्झरों की बाँह, उफनाई नदी,
तटों से मुँह जोड़ बतियाने लगी है।
निकल कर जंगल की भुजाओं से, एक आदिम गंध,
आँगन की तरफ आने लगी है ।
आँख में आकाश के चुभने लगे हैं,
दृश्य शीतल नेह देह प्रसंग के।
आ गये दिन, धूप के सत्संग के।

❖❖❖

सृजन स्मरण

माखनलाल चतुर्वेदी

जन्म- 04 अप्रैल 1889 निधन- 30 जनवरी 1968

छोड़ चले, ले तेरी कुटिया,
यह लुटिया–डोरी ले अपनी।
फिर वह पापड़ नहीं बेलने,
फिर वह माल पडे न जपनी।

यह जागृति तेरी तू ले–ले,
मुझको मेरा दे–दे सपना।
तेरे शीतल सिंहासन से,
सुखकर सौ युग ज्वाला तपना।

सूली का पथ ही सीखा हूँ,
सुविधा सदा बचाता आया।
मैं बलि–पथ का अंगारा हूँ,
जीवन–ज्वाल जलाता आया।

सृजन स्मरण

अयोध्या सिंह उपाध्याय हरिऔध

15 अप्रैल, 1865-16 मार्च, 1947

ज्यों निकल कर बादलों की गोद से,
थी, अभी एक बूँद कुछ आगे बढ़ी।
सोचने फिर–फिर यही जी में लगी,
आह! क्यों घर छोड़कर मैं यों बढ़ी ?

देव मेरे भाग्य में क्या है बटा,
मैं बचूँगी या मिलूँगी धूल में ?
या जलूँगी फिर अंगारे पर किसी,
चू पड़ूँगी या कमल के फूल में ?

बह गयी उस काल एक ऐसी हवा,
वह समुन्दर ओर आई अनमनी।
एक सुन्दर सीप का मुँह था खुला,
वह उसी में जा पड़ी, मोती बनी।